(177) परहित सरिस धर्म नहीं भाई

संकेत बिंदु—(1) निस्वार्थ कार्य परहित (2) शारीरिक शक्ति और सहनशीलता (3) परहित समान दूसरा धर्म नहीं (4) परोपकार के लिए स्वयं को कष्ट (5) परहित विविध रूपी।

रामचरितमानस मे श्री राम भरत की विनती पर साधु-असाधु का भेद बताने के बाद कहते हैं—*'परहित सरिस धर्म नहीं भाई'* और *'पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।'* (7/41/1) अर्थात् परहित के समान अन्य कोई श्रेष्ठ धर्म नहीं है और पर-पीड़ा सम अन्य कोई निम्न पाप नहीं है।

स्वार्थ-निरपेक्ष रहकर दूसरों के हितार्थ कार्य करना परहित है। पर-पीड़ाहरण परहित है। पारस्परिक विरोध की भावना घटाना और प्रेम भाव बढ़ाना परहित है। दीन, दुःखी, दुर्बल की सहायता परहित है। आवश्यकता पड़ने पर निःस्वार्थ भाव से दूसरों को सहयोग देना परहित है। मन, वचन और कर्म से समाज का मंगल साधन परहित है।

'परहित सरिस धर्म नहीं' का अर्थ हुआ—परहित (परोपकार) ही इस लोक में सर्व-सुख तथा सर्व उन्नति का कारण है और मृत्यु होने पर आवागमन से छुटकारा प्राप्त करने का साधन है।

परहित से व्यक्ति में सक्रिय शारीरिक शक्ति बनी रहती है। शरीर बलवान् होकर अपराजेयता को प्राप्त होता है। सहनशील होने से वह अशांत नहीं होता। धैर्य उसे विचलित नहीं होने देता। बल उसमें कुछ कर सकने का सामर्थ्य उत्पन्न करता है। वचन-परिपालन से उसमें आत्मविश्वास जागृत होता है। परिणामस्वरूप परहित से श्री की समृद्धि होती है। सुखपूर्वक लौकिक जीवन में उन्नति करता हुआ व्यक्ति अन्त में इन्द्रियों को वश में रखते हुए प्राण त्याग कर जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त होता है।

हर्ष कहते हैं, 'एक सूर्य ही धन्य है, जिसका प्रयास परहित करने में है।' चन्द्रमा परहित निरत होकर जगत् को शीतलता प्रदान कर अपना धर्म निबाहता है। मेघ परहित बरस कर जगत् का पोषण करते हैं। लताएँ और वृक्ष परहित के लिए फलते हैं। नदियाँ परहित बहती हैं। गौएं परहित अमृतमय दूध देती हैं। कालिदास कहते हैं, 'वृक्ष अपने सिर पर तीव्र धूप को सहन करता है और अपनी छाया से अपने आश्रितों के सन्ताप दूर करता है।' वायु निरन्तर बहकर जीवन देती है। समुद्र अपने रत्न परहित लुटाता है। प्रकृति का कण-कण परहित समर्पित है, वह स्वार्थ से ऊपर है।

'असुर विनाश' श्री राम का धर्म था। 'परित्राणाय साधूनाम्' तथा 'विनाशाय च दुष्कृताम्' कहकर योगेश्वर श्री कृष्ण ने अपना धर्म पहचाना। सिख गुरुओं ने हिन्दू धर्म की रक्षा को धर्म माना। 'हिन्दुअन की लाज' रखना ही शिवाजी ने अपना धर्म माना। जन-सेवा को गाँधी जी ने अपने अभ्युदय का सम्बल माना। तुलसी ने हिन्दू जीवन की व्याख्या

में सर्वोच्च कल्याण के दर्शन किए। स्वामी विवेकानन्द ने दीन-दुखियों, पीड़ितों की सेवा में जीवन की कृतार्थता मानी। ये महापुरुष परहित को धर्म समझकर जीवन-भर कार्य करते रहे। इसीलिए ऋद्धि-सिद्धि इनके चरण चूमती रही। यश और कीर्ति इनके पीछे दौड़ती रही। परलोक में मोक्ष का द्वार उनके स्वागत में खुला रहा।

परहित के समान दूसरा धर्म अर्थात् कर्तव्य भी नहीं है। प्यासे को पानी पिलाना, भूखे को भोजन कराना, अंधे को मार्ग दर्शाना, नंगे को वस्त्र देना, दरिद्र के दुःख दूर करना, पीड़ित की पीड़ा हरना, पतित को पावन करना, अशांत को शांति देना मानव के सहज धर्म हैं। हरिऔध जी प्रियप्रवास में लिखते हैं—

विपत्ति से रक्षण सर्वभूत का, सहाय होना असहाय का।
उबारना संकट से स्वजाति का, मनुष्य का सर्वप्रधान धर्म है॥

'परोपकारः पुण्याय' कहकर व्यास जी ने परहित को ही धर्म माना। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः' की कामना करके ऋषि-मुनियों ने परहित को धर्म माना। 'परोपकाराय सतां विभूतयः' कहकर भर्तृहरि ने परहित में धर्म के चरम लक्ष्य के दर्शन किए। मैथिलीशरण गुप्त ने *'मनुष्य है वही जो मनुष्य के लिए मरे'* कहकर परहित में धर्म के कर्तव्य और कृतार्थता को समझा।

परोपकार को धर्म समझने का अर्थ कंटकाकीर्ण मार्ग पर चलकर अपने तन-मन को कष्टों की अग्नि में झुलसाना है। फूलों की सेज त्याग कर कांटों की चुभन से प्यार करना है। दुःख में सुख के, पीड़ा में शांति के, कष्ट में आनन्द के, त्याग में सच्चिदानन्द के तथा बलिदान में मोक्ष के दर्शन करना है। ईसामसीह का सूली पर चढ़ना, सुकरात का जहर पीना, दधीचि का अस्थि-दान, राजा शिवि का अपने शरीर का मांस दान करना, दयानन्द का विषपान और शहीदों का बलिदान परहित धर्म-पालन में सच्चिदानन्द की प्राप्ति ही तो है।

परहित विविध रूप वाला है। व्यक्तिगत रूप में मनुष्य यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, सत्य, क्षमा, मन और इन्द्रियों का संयम तथा लोभ-त्याग द्वारा परहित का धर्म निबाह सकता है। ऋषि-मुनियों का जीवन इसका उदाहरण है। 'धर्मो रक्षति रक्षितः' को सिद्धान्त वाक्य मान कर धर्म-रक्षाहित अपना जीवन बिता सकता है। साधु-संन्यासी इसके उदाहरण हैं। समाज में फैली कुरीतियों, कुप्रथाओं, अन्ध-विश्वासों को दूर करके मनुष्यों को सचेत करने में धर्म की कृतार्थता मान सकता है। महर्षि दयानन्द और डॉ. हेडगेवार इसके उदाहरण हैं। राष्ट्र-हित को ही धर्म समझने वाले अपने जीवन को मोक्ष की प्राप्ति का अधिकारी मान सकते हैं।

परहित में धर्म के दर्शन करने वाले लोग सैकड़ों यज्ञों से प्राप्त पुण्य से भी अधिक पुण्य लाभ करते हैं। वे इहलोक में सुख, शांति, ऐश्वर्य तथा यश अर्जित करते हैं। तुलसी के वचन इसके प्रमाण हैं— *'परहित बस जिन्ह के मन माही, तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।* 'ऐसे लोग अनचाहे में यश के भागी होते हैं। *'परहित लागि तजहिं जो देही। सन्तत संत प्रशंसहि तेही।'* राम, कृष्ण, दयानन्द, विवेकानन्द आदि सैकड़ों महापुरुष इसके उदाहरण हैं। वे मृत्यु की वेदना को हँसते हुए सहकर मोक्ष के भागी बनते हैं।